जौनपुर का शाही किला

जौनपुर का शाही किला शहर से करीब दो किलोमीटर दूर गोमती नदी के किनारे शाही पुल के पास स्थित है। इस ऐतिहासिक किले का निर्माण फिरोज शाह तुगलक ने वर्ष 1362 में कराया था। यह वह समय था जब तुगलक वंश ने जौनपुर को एक मजबूत सैन्य व प्रशासनिक केंद्र का दर्जा दिया था। यह किला अपनी भव्यता और स्थापत्य कला के लिए मशहूर है। मुख्य द्वार के पास शौर्य का प्रतीक विजय स्तंभ, विशाल द्वार और मेहराब देखने लायक हैं। किले से गोमती नदी का मनोरम दृश्य देखा जा सकता है। जौनपुर की विरासत को दर्शाने के साथ शाही किला इतिहास प्रेमियों और पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है।

– मनोज त्रिपाठी, कानपुर

ऐतिहासिक धरोहर, वास्तुकला की झलक

शाही किला अपनी मजबूत दीवारों, ऊंचे दरवाजों और सुरक्षा की दृष्टि से तैयार की गई गहरी खाई के लिए जाना जाता है। किले का मुख्य द्वार काफी बड़ा और नक्काशीदार है। प्रवेश द्वार की ऊंचाई 36 फुट है, इसके उपर एक विशाल गुंबद बना है। किले के भीतर का गेट 26.5 फुट ऊंचा और 16 फुट चौड़ा है। कभी किले के भीतर कई महल, बावड़ियां और खूबसूरत इमारतें थीं, लेकिन वर्तमान में कुछ ज्यादा नहीं बचा है। किले के भीतर एक मस्जिद और एक तुर्की हम्माम ही केवल दो प्रमुख संरचनाएं बची हैं। परिसर में एक दरगाह के साथ एक गेट जैसी संरचना भी है। हम्माम पर बने ऊंचे,नीचे गुंबद बहुत सुंदर ढंग से बनाए गए हैं। वर्तमान में किला एक संरक्षित इमारत है।

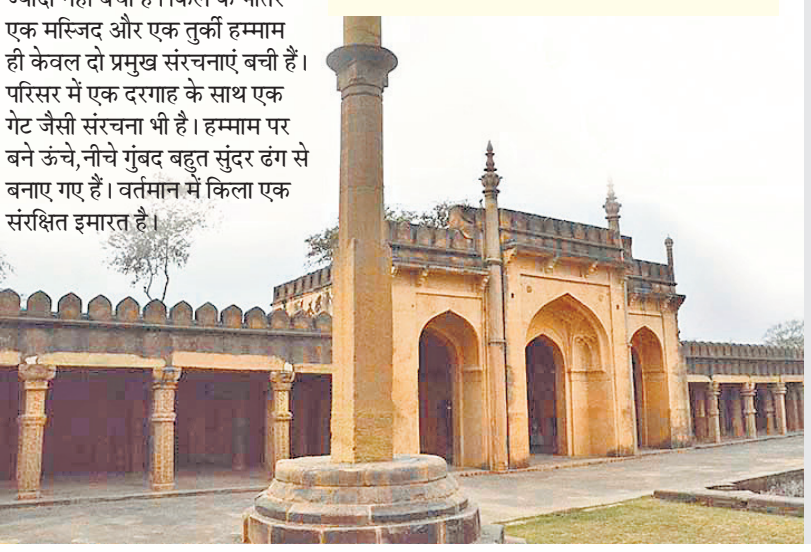

राठौर राजाओं के मंदिरों और महलों की सामग्री का प्रयोग

शाही किला को कन्नौज के राठौर राजाओं के मंदिरों और महलों की सामग्री का उपयोग करके बनाया गया था। इस किले को अनेक शासकों द्वारा कई बार नष्ट किया गया। मुगल साम्राज्य के शासन के दौरान किले का व्यापक जीर्णोद्धार और मरम्मत की गई। इसकी वजह किले का सामरिक रूप में महत्वपूर्ण होना था। बाद में यह किला अवध के नवाबों के अधीन रहा, लेकिन ब्रिटिश शासन के समय इसकी स्थिति कमजोर होती गई।

पत्थर की दीवारों से घिरा एक अनियमित चतुर्भुज

पूर्व में इसे केरार कोट किला कहते थे। किले का लेआउट पत्थर की दीवारों से घिरा एक अनियमित चतुर्भुज है। दीवारें उभरी हुई मिट्टी की दीवारों से घिरी हुई है। हालांकि मूल संरचनाओं के अधिकांश अवशेष खंडहर हालत में हैं या दफन हो चुके हैं। मुख्य द्वार पूर्व की ओर है। सबसे बड़ा आंतरिक द्वार 14 मीटर ऊंचा है। इसकी बाहरी सतह अशलर पत्थर से बनी है।

बाहरी दीवारों पर सजावटी आले, मेहराबों के बीच नीले-पीले पत्थर

16 वीं शताब्दी में जौनपुर के गवर्नर मिनम खान के संरक्षण में मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल के दौरान एक और बाहरी द्वार स्थापित किया गया था। इसे एक बगल की बुर्ज के आकार में डिजाइन किया गया है। बाहरी द्वार के मेहराबों के बीच के स्पैन्ड्रेल या रिक्त स्थान को नीले और पीले रंग के पत्थरों से सजाया गया था। बाहरी द्वार की दीवारों में सजावटी आले बनाए गए हैं। किले की संरचना में स्थापित गुंबदों के शीर्ष पर खुलने के कारण प्रकाश अंदर आता है।

तुर्की शैली का हम्माम, मस्जिद निर्माण में हिंदू और बौद्ध शिल्प

किले के भीतर आदर्श तुर्की शैली का एक स्नानघर है, जिसे आमतौर पर हम्माम या भूलभुलैया के नाम से जाना जाता है। हम्माम आंशिक रूप से भूमिगत बना हुआ है, जिसमें इनलेट और आउटलेट चैनल, गर्म और ठंडा पानी और इसी तरह की अन्य सुविधाएं हैं। भीतर एक मस्जिद भी है। इब्राहिम बरबक द्वारा बनवाई गई इस मस्जिद के निर्माण में हिंदू एवं बौद्ध शिल्प कला की छाप साफ दिखाई पड़ती है। इसे जौनपुर शहर की सबसे पुरानी इमारत गिना जाता है। इसके बगल में 12 मीटर ऊंचा पत्थर का स्तंभ है, जिस पर एक फारसी शिलालेख खुदा हुआ है, जो मस्जिद के निर्माण की कहानी बताता है। मस्जिद में तिहरे मेहराब हैं और इसके ऊपर तीन निचले केंद्रीय गुंबद हैं।

रंग-तरंग

खामोश पत्थरों में उतरता संगीत

इतिहास की किताबों में दर्ज कई इमारतें समय के साथ खामोश हो जाती हैं, लेकिन हैदराबाद के सिकंदराबाद स्थित 300 साल पुरानी बंसीलालपेट बावड़ी आज फिर से सांस ले रही है। कभी उपेक्षित और गुमनामी में डूबी यह ऐतिहासिक जल संरचना अब संगीत और कला के जरिए शहर की एक जीवंत सांस्कृतिक पहचान बन चुकी है। 'टैंगी सेशंस' नामक समूह की पहल ने इस बावड़ी को हर वीकेंड एक अनोखे सांस्कृतिक मंच में बदल दिया है। आम दिनों में शांत रहने वाली नक्काशीदार पत्थर की सीढ़ियां शनिवार और रविवार की शाम रोशनी से जगमगा उठती है। शाम 5:45 से रात 8 बजे तक ढलते सूरज की सुनहरी किरणें, बावड़ी की गहराई से आती ठंडी हवा और पानी में पड़ती रोशनी का

प्रतिबिंब मिलकर एक जादुई माहौल रचते हैं। दीवारों से टकराती संगीत की लहरें दर्शकों को इतिहास और वर्तमान के बीच एक रूहानी यात्रा पर ले जाती हैं। टैंगी सेशंस के संस्थापक अर्जुन का मानना है कि विरासत को सहेजने के लिए केवल ढांचे का संरक्षण पर्याप्त नहीं, बल्कि उसे जीवंत बनाए रखना जरूरी है। उनके अनुसार, जब लोग बार-बार ऐसे स्थलों पर सांस्कृतिक अनुभव के लिए आते हैं, तो वे केवल दर्शक नहीं रहते, बल्कि उस विरासत के संरक्षक बन जाते हैं। यह पहल दर्शाती है कि कला और संगीत पुराने स्मारकों को नई पीढ़ी से जोड़ने का सशक्त माध्यम बन सकते हैं। बंसीलालपेट बावड़ी आज सिर्फ एक ऐतिहासिक स्थल नहीं, बल्कि हैदराबाद की सांस्कृतिक चेतना का जीवंत प्रतीक बन चुकी है।

यहां होने वाले कार्यक्रमों की सूची काफी विविधतापूर्ण है। इसमें लोक संगीत, सूफी गायन, कविता पाठ, मुशायरे, थिएटर और आधुनिक रैप सेशंस भी शामिल होते हैं। आयोजक ध्वनि के स्तर (Acoustics) का विशेष ध्यान रखते हैं ताकि संगीत बावड़ी की गरिमा और शांति के साथ मेल खाए। अब तक यहां सूफी गायकों से लेकर वायलिन वादक अभिजीत गुरजले जैसे कलाकार अपनी प्रस्तुति दे चुके हैं। स्थानीय कलाकारों के साथ-साथ राहत इंदोरी और संजीता भट्टाचार्य जैसे नामचीन सितारे भी यहां शिरकत कर चुके हैं।

आर्ट गैलरी

क्लाउड मोनेट की 'Bridge over a Pond of Water Lilies'

'वॉटर लिली के तालाब पर पुल' क्लाउड मोनेट की 1899 की मशहूर इंप्रेशनिस्ट ऑयल पेंटिंग है। इसमें फ्रांस के गिवर्नी में उनके वॉटर लिली गार्डन के ऊपर बनाया गया जापानी-स्टाइल का लकड़ी का पैदल पुल दिखाया गया है। इसमें चमकीले हरे, नीले और गुलाबी रंगों को एक्सप्रेसिव ब्रशस्ट्रोक के साथ इस्तेमाल किया गया है। यह पेंटिंग न्यूयार्क के मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट के कलेक्शन का हिस्सा है।

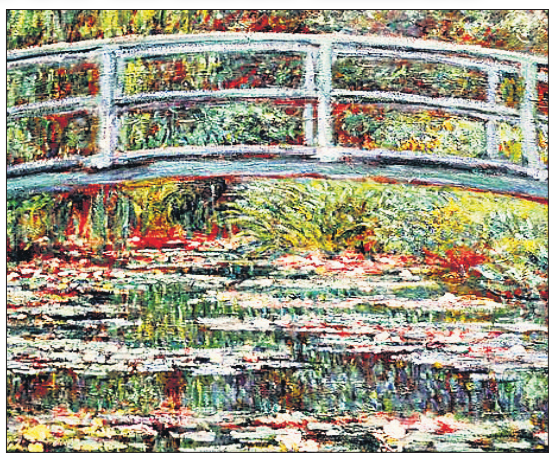

क्लाउड मोनेट के बारे में

ऑस्कर-क्लाउड मोनेट फ्रांसीसी चित्रकार थे। वह फ्रेंच इंप्रेशनिस्ट पेंटिंग के संस्थापक भी रहे। उनके पिता एडोल्फ मोनेट किराना व्यापारी थे। सबसे बड़े बेटे क्लाउड जब पांच बरस के थे, तो परिवार नॉर्मंडी तट पर ले हावरे के पास चला गया। उनका ज्यादातर समय समुद्र तटों पर बीता। यहीं से प्रकृति के प्रति उनकी नई सोच का जन्म हुआ। 15 साल की उम्र तक, मोनेट ने ले हावरे के कई स्थानीय लोगों के चारकोल कैरिकेचर बनाकर अपना नाम कमा लिया था। ये चित्र, जिन्हें वह 10-20 फ्रैंक में बेचते थे, उन पर 'ओ. मोनेट' के सिग्नेचर थे।

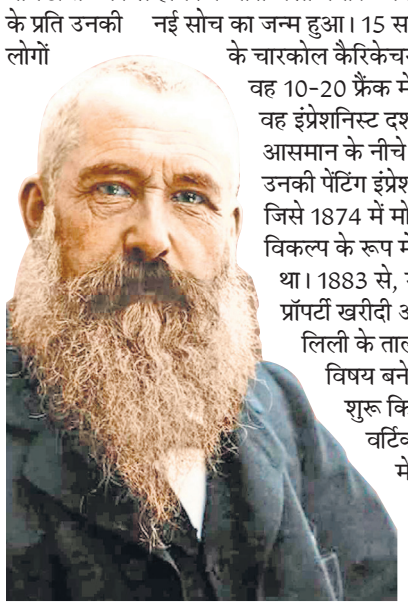

वह इंप्रेशनिस्ट दर्शन के सबसे सुसंगत कलाकार थे। खासकर खुले आसमान के नीचे लैंडस्केप पेंटिंग के मामले में। 'इंप्रेशनिज्म' शब्द उनकी पेंटिंग इंप्रेशन, (इंप्रेशन, सनराइज) के शीर्षक से लिया गया है, जिसे 1874 में मोनेट और उनके सहयोगियों द्वारा सैलून डी पेरिस के विकल्प के रूप में आयोजित पहली स्वतंत्र प्रदर्शनियों में प्रदर्शित किया था। 1883 से, मोनेट गिवर्नी में रहते थे, जहां उन्होंने एक घर और प्रॉपर्टी खरीदी और एक बड़ा लैंडस्केपिंग प्रोजेक्ट शुरू किया, जिसमें लिली के तालाब शामिल थे, जो उनके सबसे मशहूर कामों का विषय बने। उन्होंने 1899 में वॉटर लिलीज की पेंटिंग बनाना शुरू किया, पहले जापानी पुल को मेन सब्जेक्ट बनाकर वर्टिकल व्यू में और बाद में बड़ी-बड़ी पेंटिंग्स की सीरीज में, जिसमें वह अपनी जिंदगी के अगले 20 साल लगातार व्यस्त रहे। मोनेट का निधन 5 दिसंबर, 1926 को 86 साल की उम्र में फेफड़ों की बीमारी से हुआ। उनकी इच्छा के अनुसार, उनका अंतिम संस्कार छोटा और सादा रहा।

रोमानिया की अनोखी परंपरा

परंपराएं दुनिया की

नए साल का जश्न दुनियाभर में अलग-अलग अंदाज में मनाया जाता है। कहीं केक काटे जाते हैं, कहीं आतिशबाजी होती है, तो कहीं संगीत और नृत्य के साथ नए साल का स्वागत किया जाता है, लेकिन रोमानिया में नए साल का जश्न एक बिल्कुल अलग और अनोखी परंपरा के साथ मनाया जाता है, जिसे देखकर कोई भी हैरान रह जाए।

यहां लोग नए साल के अवसर पर भालुओं जैसी भारी-भरकम पोशाकें पहनकर सड़कों पर उतरते हैं और पारंपरिक नृत्य करते हैं। इस परंपरा को 'डांस ऑफ द बेयर' कहा जाता है, जो सदियों पुरानी लोक मान्यताओं से जुड़ी हुई है। माना जाता है कि भालू शक्ति, साहस और संरक्षण का प्रतीक होता है। भालू का यह नृत्य बुरी आत्माओं को दूर भगाने और आने वाले साल के लिए धरती को उपजाऊ व समृद्ध बनाने में सहायक माना जाता है। नृत्य के दौरान ढोल-नगाड़ों की तेज धुनें, रंग-बिरंगी वेशभूषा और सामूहिक उत्साह पूरे माहौल को जीवंत बना देते हैं। यह परंपरा न सिर्फ आस्था का प्रतीक है, बल्कि रोमानिया की सांस्कृतिक विरासत और लोक जीवन की गहराई को भी दर्शाती है।

फड़ चित्रकला: लोकआस्था की जीवंत परंपरा

फड़ चित्रकला राजस्थान की एक दुर्लभ और ऐतिहासिक लोककला है, जिसकी परंपरा लगभग 700 वर्षों से एक ही वंश में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। इसकी उत्पत्ति राजस्थान के भीलवाड़ा जिले के पास स्थित शाहपुरा क्षेत्र में मानी जाती है। फड़ वस्तुत : एक विशाल स्क्रॉल पेंटिंग होती है, जिसमें स्थानीय देवी-देवताओं और लोकनायकों की विस्तृत धार्मिक कथाएं चित्रित की जाती हैं। इन चित्रों को चलती-फिरती या 'मोबाइल मंदिर' के रूप में देखा जाता था। रबारी जनजाति के पुजारी-गायक, जिन्हें भोपा और भोपी कहा जाता है, इन्हें अपने साथ गांव-गांव ले जाते थे।

लोकायन

रबारी जनजाति देवनारायणजी (विष्णु के अवतार) और लोकनायक पाबूजी की वीर गाथाओं को गायन और कथा-प्रस्तुति के माध्यम से जीवंत करते थे। सूर्यास्त के बाद फड़ को खोला जाता था और यह प्रस्तुति पूरी रात चलती रहती थी। स्थानीय बोली में 'फड़' का अर्थ 'मोड़ना' होता है, जो इस कला के स्वरूप को भी दर्शाता है। फड़ चित्रकला अत्यंत श्रमसाध्य और अनुशासनबद्ध प्रक्रिया से बनती है। इसे हाथ से बुने मोटे सूती कपड़े पर बनाया जाता है, जिसे पहले रातभर भिगोया जाता है ताकि धागे मजबूत हो सकें। इसके बाद चावल या गेहूं के आटे से बने स्टार्च से कपड़े को कड़ा किया जाता है, धूप में सुखाया जाता है और मूनस्टोन से रगड़कर सतह को चिकना व चमकदार बनाया जाता है।

इस कला की एक विशेषता इसका पूर्णतः प्राकृतिक होना है। रंग पत्थरों, फूलों, पौधों और जड़ी-बूटियों से तैयार किए जाते हैं। कलाकार इन्हें स्वयं बनाते हैं और गोंद व पानी के साथ मिलाकर कपड़े पर प्रयोग करते हैं। फड़ चित्रकला में पीला, नारंगी, हरा, भूरा, लाल, नीला और काला रंग प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। प्रत्येक रंग का प्रतीकात्मक उपयोग होता है- पीला प्रारंभिक रेखांकन और आभूषणों के लिए, नारंगी शरीर के अंगों के लिए, हरा वनस्पति के लिए, भूरा वास्तु संरचनाओं के लिए, लाल शाही वस्त्रों और सीमाओं के लिए, नीला जल व पर्दों के लिए, जबकि काला रंग अंत में रूपरेखा उभारने के लिए प्रयोग किया जाता है। इतनी सख्त पारंपरिक सीमाओं के कारण यह कला एक समय लुप्त होने की कगार पर पहुंच गई थी। ऐसे में प्रसिद्ध फड़ चित्रकार और पद्मश्री से सम्मानित श्री लाल जी जोशी ने 1960 में भीलवाड़ा में जोशी कला कुंज की स्थापना कर इस परंपरा को नया जीवन दिया। उन्होंने पहली बार परिवार के बाहर के कलाकारों को भी फड़ कला सिखाने का साहसिक कदम उठाया। उनके पुत्र गोपाल और कल्याण जोशी के नेतृत्व में यह प्रयास और विस्तृत हुआ और 1990 में इस संस्थान का नाम चित्रशाला रखा गया। आज तक चित्रशाला में 3,000 से अधिक कलाकार प्रशिक्षित हो चुके हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य केवल कला को जीवित रखना नहीं, बल्कि उसकी पारंपरिक तकनीकों और प्राकृतिक रंगों की जटिल प्रक्रियाओं को भी संरक्षित करना रहा है। फड़ चित्रकला केवल दृश्य सौंदर्य की कला नहीं, बल्कि सदियों पुरानी लोककथाओं, आस्था और सांस्कृतिक स्मृति का जीवंत दस्तावेज है। आधुनिक समय में ऐसी कलात्मक विरासतों को बढ़ावा देना आवश्यक है, क्योंकि यही भारत की लोकसंस्कृति और ऐतिहासिक चेतना को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाती हैं।